जन ख़बर جن خبر

वर्ष: 3 अंक: 1 | अररिया (बिहार) मई 2020 | सहयोग राशि: 5/-

संपादक की क़लम से

साथियो, इस वर्ष के जन ख़बर के पहले अंक को निकलने में बहुत समय लग गया। पिछले अंक से इस अंक तक जो समय बीता उसमें देश और दुनिया में बहुत सी घटनाएँ सामने आयीं जो पूंजीवादी व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करती हैं। पूरा विश्व आज कोरोना वाईरस से फैलने वाले संक्रमण से जूझ रहा है - मज़दूर विरोधी सरकारें कड़ी नीतियाँ अपना रही हैं और मज़दूरों की हालत बद से बदत्तर हो गयी है। भारत में बिना किसी तैयारी के लॉकडाउन घोषित होने पर प्रवासी मज़दूरों को बहुत कष्ट झेलना पड़ा - कुछ तो शहरों से पैदल ही अपने गाँव लौट आये ओर जो शहरों में रुक गए उन्हें खाने की बहुत दिक्कत हुई। लॉकडाउन के दौरान ये तो स्पष्ट हो गया कि मज़दूरों के लिए यहाँ कोई जगह नहीं। उनकी उपयोगिता केवल तब तक है जब तक कि वे पूंजीपतियों को अपने श्रम की लूट से मालामाल कर रहे हैं। कोरोना वाईरस की आड़ में सरकार ने तो ये तक करने की सोच ली है कि काम के घंटे 8 से 12 कर देंगे। जिस लड़ाई को कई साल पहले मज़दूरों ने अपना खून बहा कर जीता, उस पर भी हमले की तैयारी है। मज़दूरों की बुनियादी ज़रूरतों को दरकिनार कर सरकार जनता से थाली बजवा रही है और टीवी पर उन्हें रामायण दिखा रही है। और केवल यही नहीं, लॉकडाउन का फ़ायदा उठा कर, राजसत्ता उसकी जनता विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ उठ रही आवाजों को दबाने का भी प्रयास कर रही है जिसके तहत झूठे केसों में राजनैतिक कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी हो रही है।

इस अंक में इन तमाम मुद्दों पर लेख शामिल हैं- कोरोना लॉकडाउन का प्रवासी मज़दूरों पर क्या असर पड़ा, नागरिकता संशोधन क़ानून के पीछे केंद्र सरकार की मंशा, सीएए के ख़िलाफ़ देश में फैलती आग, विवाह के सन्दर्भ में डॉ. अम्बेडकर की सोच, पाकिस्तान और भारत में मजबूत होता छात्र आन्दोलन, और साथ ही आज की परिस्थिति पर आधारित एक व्यंग्य रचना भी इस बार शामिल की गयी है। उम्मीद है आपको ये अंक पसंद आएगा।

अगर आपका कोई सवाल हो या फिर आप कोई सुझाव देना चाहें तो आप साथी कल्याणी को इस नंबर पर संपर्क कर सकते हैं – 9711888155

इंक़लाब ज़िंदाबाद!

छोड़े गए लोग – लॉकडाउन में प्रवासी मज़दूर

कोरोना वाइरस के चलते दुनिया में 30 अप्रैल तक करीब 33 लाख लोग बीमार हुए और करीब 2 लाख 34 हजार लोगों की मौत हो गयी। भारत में करीब 35 हजार लोग बीमार हुए और करीब 1100 लोग मर गए हैं। यह वाइरस दूसरे वाइरस की तरह एक इंसान से दूसरे इंसान में जाता है, नाक, आँख, मुंह के रास्ते। एक दुसरे से दूरी बनाना, बार-बार साबुन से हाथ धोना, छींकते-खांसते वक्त मुंह पर रुमाल रखना वाइरस से बचने के कुछ तरीके हैं। कोरोना ने दुनिया के कई हिस्सों को एक तरह से ठप्प का दिया है। यह वाइरस चीन में पहली बार पाया गया और उन्ही देशों में ज्यादा फैला जहां के लोगों का चीन से ज्यादा संपर्क रहा। इस वाइरस को मारने की दवाई नहीं है। ज्यादातर संक्रमित लोग बिना ख़ास तकलीफ के ठीक हो जाते हैं पर 100 में से चार लोगों के लिए यह वाइरस जानलेवा है। *(शेष पृष्ट 2 पर)*

(पृष्ट 1 से जारी) कोरोना वाइरस गरीब और अमीर में फर्क नहीं करता। ना ही यह धर्म और जाति देख कर लोगों को बीमार करता है। लेकिन हमारी सरकार किस हद तक गरीब और अमीर के बीच फर्क करती है, अखबार में निकली तस्वीरों ने हमें बता दिया । एक तस्वीर थी उत्तर प्रदेश की जिसमे दर्जनों मजदूर दिखते हैं। वह अपने घर पैदल ही लौट रहे हैं। उन्हें सड़क पर जबरन बैठाया गया और उनपर पुलिस के द्वारा केमिकल का छिड़काव किया गया। दूसरी तस्वीर थी जिसमें विदेश से भारतीय लोगों को हवाई-जहाज़ में बैठा कर लाया जा रहा है। दुखद बात यह है कि सरकार से यह सवाल पूछने वाला भी कोई नहीं कि ऐसा क्यूँ हुआ?

बिहार के करीब 20-30 लाख मजदूर किसी भी वक्त दुसरे राज्यों में मजदूरी के लिए काम कर रहे होते हैं। देशबंदी में इनमे से हजारों लोग अपने घर वापिस चल दिए क्यूंकि काम की जगह पर खाने-पीने रहने का पूरा इंतजाम नहीं था। इन हजारों मजदूरों को सरकार आसानी से बसों/ट्रेनों में ला सकती थी, उनके बीमारी की जांच कर सकती थी और उन्हें अपने-अपने घर सुरक्षित भेज सकती थी। पर सरकार द्वारा इसकी कोई तैयारी बंदी से पहले नहीं की गयी। दिल्ली में काम कर रहे मध्य प्रदेश के रणवीर सिंह पैदल ही अपने घर मोरेना की ओर निकल पड़े क्यूंकि कोई और दूसरा साधन नहीं था और आगरा पहुँचते-पहुंचते थकान से उनकी मौत हो गयी।

इस प्रकार से बीस से भी अधिक मजदूर वर्ग के लोग मर गए हैं। जो साथी अपनी जगह पर ही रुक गए वहां उन्हें खाने पीने की दिक्कत हो रही है। रोज़ ही मीडिया के माध्यम से हम दिल्ली के मजदूरों का हाल देख पा रहे हैं। दिल्ली सरकार ने तो खाना खिलाने का इंतजाम किया पर उसमे भी कई लोग छूटे जा रहे हैं।

कोरोना वाइरस से छुटकारा पाने के लिए हुई बंदी में लाखों मजदूरों का काम छूट गया है। देश में बड़ी संख्यां में ऐसे लोग हैं जो रोज़ कमाते हैं तो रोज़ खाते हैं। ऐसे लोगों के घर में बड़ी मुश्किल से खाना बन पा रहा है या फिर किसी तरह किसी से मांग कर काम चला रहे हैं। ऊपर से बाज़ार में अनाज का दाम बढ़ गया है और जिनके पास अनाज पहले से था भी उनके पास तेल, नमक और सब्जी खरीदने के लिए पैसे नहीं है। पर एक दूसरा तबका ऐसा भी है जिनके पास बंधी बंधाई तनख्वाह है। उनकी तनख्वाह रुकी नहीं है। उनके घरों में सामान की कमी नहीं। उनके लिए बंदी का मतलब घर में आराम ही है। हाँ, इतना ज़रूर है कि शहरों में ऐसे परिवारों ने घर में काम करने वाली औरतों को आने से मना कर दिया है जिसके चलते उन्हें चौका बर्तन खाना खुद बनाना पड़ रहा है। उनके लिए यही सबसे बड़ी परेशानी है। देश में ज्यादा से ज्यादा मज़दूर असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं जहां छुट्टी का पैसा नहीं मिलता चाहे काम बंद मालिक ने ही किया हो। सरकार ने कानून को इतना इसलिए ढीला छोड़ा है ताकि मालिकों के फायदे में कोई नुकसान ना हो। सरकार अपनी तरफ से भी बेरोज़गारी भत्ता नहीं देती हालांकि कई देश जैसे फ्रांस, जर्मनी आदि में काम नहीं मिलने पर लोगों को बेरोजगारी भत्ता दिया जाता है।

सवाल यह है कि मजदूरों के लिए कोई इंतजाम क्यूँ नहीं है? इस परिस्थिति को थोड़ा समझने की जरुरत है। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूरों के श्रम से ही मालिकों का मुनाफ़ा होता है। और श्रम करने के बाद ही मज़दूरों को मज़दूरी मिलती है। वह भी उनके श्रम के मोल से काफी कम। श्रम का कम दाम देकर ही मालिक मुनाफा अपने जेब में रख लेते हैं। जैसे ही काम बंद होता है, मज़दूर मालिक के लिए मुनाफा नहीं बना पाते इसलिए उनकी मजदूरी भी नहीं मिलती और वह लाचार बने रहते हैं। मज़दूर खुद अपने से सामान नहीं पैदा कर सकते क्यूंकि सामान बनाने के लिए औज़ार/मशीन और सामग्री की जरुरत होती है जो मालिक के पास ही होता है। जब खराब अर्थव्यवस्था होती है तो मजदूरों को काम भी नहीं मिलता। क्या हम ऐसे समाज के बारे में सोच सकते हैं जहां फैक्ट्री के मजदूर ही उसके मालिक हों? यानी मुनाफा किसी एक व्यक्ति का नहीं होकर पूरे समाज का हो? क्या ऐसे समाज में मजदूर यूँ ही बिना राशन पानी के 1000 की.मी पैदल चलने को मजबूर होंगे?

सरकार ने लोगों को राहत देने के लिए अनाज, गैस और कुछ नकद पैसा देने की घोषणा की है जो बहुत कम है। बहुत सारे लोगों को वह पैसा मिलेगा पर बहुत सारे लोग इन सभी सूची से छूट जायेंगे। जिनके पास राशन कार्ड नहीं है उनको ना 1000 रु मिलेगा और ना ही राशन। उसी तरह जिनके पास जन धन वाला बैंक का खाता नहीं है उन्हें 500 नहीं मिलेगा। जिनको मिलेगा उनका भी घर 1000 और कुछ किलो अनाज से नहीं चलेगा। ऐसे में लोगों को काफी तकलीफ झेलनी पड़ेगी।

इस कठिन समय में मजदूरों के हक़ में कानून बनाने के बजाय सरकार फक्ट्री में काम के घंटे को बढ़ाकर 12 घंटे तक करने जा रही है। पहले ही ये सरकार मज़दूर विरोधी मज़दूरी संहिता लागू कर चुकी है। हमें तात्कालिक रूप से उसका विरोध करने के लिए तैयार होना पड़ेगा। 1 मई दुनिया भर में मजदूरों के संघर्ष का प्रतीक है। हमें इसी दिन से ऐसे गैर वाजिब कानून का पूरजोर विरोध करने के लिए एक आन्दोलन शुरू करना चाहिए।

(हाल ही में श्रम कानूनों में जो बदलाव आयें हैं वो मज़दूरों के हित में ना हो कर मालिकों के पक्ष में हैं। अधिक जानकारी के लिए आप इस लिंक पर क्लिक करके वर्क इन प्रोग्रेस द्वारा बनाई गयी विडियो देख सकते हैं जो इस बात को और विस्तार से बताती है। https://www.facebook.com/workersconnect/videos/2184412126115777/ *)*

मज़दूर दिवस का इतिहास

मज़दूर दिवस का इतिहास मज़दूर तबक़े के संघर्षों और ख़ासकर काम के घंटे के संघर्ष से जुड़ा हुआ है। अट्ठारवीं शताब्दी में फ़ैक्ट्रियों में मज़दूर सुबह से लेकर शाम तक सोलह-अट्ठारह घंटे ग़ुलाम की तरह काम करते थे। फ़ैक्ट्री के मालिक इनकी मेहनत पर अपना राज चलाते थे। ऐसी स्तिथि से लड़ने के लिए और काम के घंटों को कम करने के लिए मज़दूरों ने गोलबंद होना शुरू किया। जब अमरीका में फ़ैक्ट्री व्यवस्था शुरू हुई लगभग तभी से यह संघर्ष भी उभरा। उन्नीसवीं सदी के दूसरे और तीसरे दशक काम के घंटे कम करने के लिए हड़तालों से भरे हुए थे। 1880 के दशक में, यानी लगभग 130 साल पहले अमरीका के मज़दूर संगठनों ने काम की अवधि 8 घंटा करने के आंदोलन को तेज़ किया और बड़े पैमानों पर मज़दूर फ़ैक्ट्रियों में हड़ताल करने लगे। उनका नारा था ***'आठ घंटा काम आठ घंटा आराम और आठ घंटा मनोरंजन'***। 1884 में 'फ़ेडेरशन ऑफ़ और्गनाइज़्ड ट्रेड एंड लेबर यूनियन' ने अपने सम्मलेन में 1 मई 1886 की तारीख़ का लक्ष्य रखा जब सभी जगह काम के घंटे आठ हो जाएँगे। जब यह तारीख़ नज़दीक आई तो कई यूनियन आठ घंटे के काम की माँग का समर्थन करते हुए हड़ताल पर गईं और रैलियाँ निकाली गईं। इसी क्रम में अमरीका के एक शहर शिकागो में 3 मई 1886 को मज़दूरों का एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन हुआ जिस पर पुलिस द्वारा गोली चलाई गई और दो मज़दूर मारे गए। पुलिस की बर्बरता के विरोध में अगले दिन यानी 4 मई को शहर के 'हे मार्केट स्कवैर' पर प्रदर्शन रखा गया। वहाँ हिंसा भड़क उठी। पुलिस द्वारा गोलियाँ चलाई गई और भीड़ में बम फेंका गया। इस हिंसा में चार मज़दूर और सात पुलिसकर्मी मारे गए। कई लोग बुरी तरह ज़ख़्मी हुए। मज़दूर नेताओं को फाँसी की सज़ा मिली और कई को जेल में डाल दिया गया। शिकागो के फ़ैक्ट्री मालिकों का मज़दूरों की माँग का यह जवाब था। लेकिन आंदोलन बढ़ता गया और अमरीका में आठ घंटे की माँग को माना गया। आंदोलन की एक बड़ी जीत हुई और 1 मई एक परंपरा बन गई। शिकागों के 'हे मार्केट' कांड और मज़दूर आंदोलन की याद में 'सेकंड इंटरनेशनल' जो सोशलिस्ट और लेबर पार्टियों का एक राजनैतिक संगठन था, ने 1 मई को अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस के रूप में मनाना शुरू किया। इस तरह दुनिया के तमाम देशों में यह फैला। दुनिया भर के ट्रेड यूनियन, श्रमिक संगठन, फ़ैक्ट्री, ऑफ़िस, खेत-खलिहान में काम करने वाले लोग इस दिन मज़दूरों के संघर्ष और आंदोलन को याद करते हुए अपने-अपने संघर्षों को आगे बढ़ाने का इरादा ज़ाहिर करते हैं।

प्रेम-विवाह से डर क्यूँ?

जाति का दर्द हम सब झेलते हैं। बहुत पहले से ही डा. अम्बेडकर और उनके सहयोगियों ने जाति के विनाश की बात की थी पर यह जाति कैसे बनी रहती है? पहले के समाज में दास प्रथा (गुलामी) थी। वह दुनिया भर से समाप्त हो गयी। फिर यह जाति प्रथा कैसी है कि हज़ारों सालों से बनी हुई है और कुछ तथाकथित 'नीची' जातियों के गले का फन्दा बनी हुई है?

जाति को ले कर बहुत सारी बाते हैं, पर एक सवाल से शुरू करती हूँ - दुनिया किस पर चलती है? आप कहेंगे, दुनिया बहुत सारी चीज़ों पर चलती है जैसे विज्ञान के नियम, पर उस के साथ एक बुनियादी चीज़ और है और यह है - **प्रेम, मैत्रेयी, करुणा**। यह शब्द हाल में मेरे दिमाग में डा. अम्बेडकर को पढ़ते हुए जाति से जुड़े। यदि यह सच है तो फिर सब का सब से प्रेम होना चाहिए। प्रेम के विभिन्न रूप हैं- माँ-बाप का अपने बच्चों के लिए प्रेम, दो दोस्तों के बीच प्रेम, प्रेमियों और प्रेमी जोड़ों के बीच प्रेम, यह प्रेम जो आमूमन शादी के रिश्ते में बदलता है। लोगों को यह लगता है कि यह बात फिल्मी है। नहीं यह सब प्रेम के प्रकार हैं, बल्कि डा. अम्बेडकर की मानें तो जाति बनाए रखने के लिए इस प्रेम को समाप्त करना ज़रूरी था और शायद यही कारण है कि आज भी हम शादी अपनी जाति में ही करना चाहते हैं। लड़का-लडकी भाग कर अन्य जाति में शादी कर लें तो शायद हम सह लेंगे, पर क्या हम दूसरी जाति में रिश्ता ले कर जायेंगे? सुन्दर सुशील पढ़ा लिखा 'हम से छोटी जाति' का लड़का अगर बिना दहेज की शादी के लिए तैयार हो तो क्या हम अपनी लड़की का रिश्ता उसके पास ले कर जायेंगे? नहीं, क्यूंकि शादी जाति में ही होती है। डा. अम्बेडकर कहते थे कि सच पूछें तो जाति की एक ही विशेषता है कि वह अपना अस्तित्व या अपनी पहचान बनाए रखने के लिए शादी पर गहरी निगरानी रखती है, ताकि जात के बाहर कोई शादी न हो, कोई मेलमिलाप न हो, हमारा खून एक ना हो! आज भी यह सच है और यह सच बना रहा तो जाति व्यवस्था कैसे टूटेगी?

मुझे गलत न समझें, डा. अम्बेडकर का मानना सिर्फ यह नहीं था कि अंतरजातीय शादियों से ही जाति प्रथा टूटेगी। वह राजनितिक, शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक बदलाव की बात कर रहे थे। इनमें से बहुत कुछ हासिल भी हुआ है, पर अंतरजातीय शादियों का न होना या बहुत कम होना मुझे सोचने पर मजबूर करता है कि आखिर जाति में ऐसा क्या है की यह जाती नहीं । शायद उसका यह धार्मिक आधार कि खून का मिश्रण नहीं हो सकता! और यह धार्मिक आधार सबसे ज्यादा साफ़ रूप में 'मनुस्मृति' में लिखा है। इसलिए 1927 में ही डा. अम्बेडकर और उनके सहयोगियों के नेतृत्व में मनुस्मृति दहन किया गया था।

1936 में 'जाति प्रथा का विनाश' नाम के अपने भाषण में डा. अम्बेडकर कहते हैं "प्रत्येक पुरुष और स्त्री को शास्त्रों के बंधन से मुक्त कराईये, शास्त्रों द्वारा स्थापित हानिकारक धारणाओं से इनके दिमाग का पिंड छुड़ाईए, फिर देखिये वह आपके कहे बिना अपने आप अंतरजातीय खान-पान तथा अंतरजातीय विवाह का आयोजन करेगा/करेगी।" इस बार आपको इस विचार के साथ छोड़ते हैं अगली बार इस बात को आगे बढ़ाएंगे।

(यह लेखा कामायनी स्वामी ने लिखा है। वह जन जागरण शक्ति संगठन और मोसमात बुधिया शिक्षा निर्माण संगठन से जुडी हैं।)

हम मेहनतकश

पिछले अंक से हमने अपने मज़दूर साथियों की ज़िंदगियों से जुड़ी बातें छापनी शुरू की थी। हम जानते हैं कि दुनिया की सारी चीज़ें मज़दूर अपने श्रम से बनाते हैं पर उनकी मज़दूरी इतनी नहीं कि वह इज्ज़त से जी सकें। मालिकों का मुनाफ़ा बढ़ता जा रहा है और इसलिए दुनिया में आर्थिक ऊंच नीच की खाई गहराती ही जा रही है। सरकारें भी अक्सर मज़दूरों के ख़िलाफ़ ही काम करती हैं, ख़ासकर हमारे देश में। मौजूदा सरकार ने न्यूनतम मजदूरी से लेकर दूसरे सामाजिक सुरक्षा के अधिकारों में कटौती की है। और ये सब इसलिए ताकि मजदूर कम दाम में भी काम करने को मजबूर हों। इसी व्यवस्था की समझ बढ़ाने के लिए हम ये कहानियाँ छापते हैं। इस बार की कहानी रानीगंज प्रखंड के खरहट गांव में रहने वाले निरंजन कुमार की है।

निरंजन जन जागरण शक्ति संगठन के सक्रिय सदस्य हैं। उनके संयुक्त परिवार में कुल 14 सदस्य हैं और 5 बीघा खुद की ज़मीन है जिसमें 4 बीघा में वह खेती करते हैं। इसके अलावा 8 बीघा जमीन वह लीज़ लेकर खेती करते हैं। वह एक छोटे किसान हैं जो साल में कुछ महीने धान और मक्का की खेती करते हैं जिससे उनकी क़रीब 1 लाख सालाना आय होती है। जब खेती का मौसम चला जाता है तो बाहर मज़दूरी करने चले जाते हैं। उत्पादन के साधनों जैसे ज़मीन की कमी के चलते बिहार के जो लोग खेती भी करते हैं, उन्हें जीवन निर्वाह के लिए साल के बाकि समय बाहर मज़दूरी के लिए भी जाना पड़ता है। निरंजन ने बताया कि वे अब तक लुधियाना और मद्रास में सिलाई का काम कर चुके हैं। मद्रास अब भी जाते हैं। सिलाई में हर पीस की कीमत होती है और उसके हिसाब से इन्हें मजदूरी मिलती है। इन्होंने बताया कि लुधियाना में बहुत सारे मज़दूर बिहार से जाते हैं। काम वहां अच्छा होता है पर रुपया समय पर नहीं दिया जाता है। जब भी रुपया मांगने जाते हैं, टाल दिया जाता है। वैसे तो भुगतान में देरी होने पर क़ानूनी कारवाई हो सकती है पर लेबर विभाग जो सरकार के अधीन है, मालिकों को नाराज़ नहीं करता। निरंजन ने बताया कि लुधियाना में भाषा के आधार पर भेदभाव भी होता है और इनसे बातचीत अच्छे से नहीं की जाती थी। वहीं मद्रास में ये तकलीफ नहीं है क्यूंकि वहां लोग इनकी भाषा ज्यादा नहीं समझते जिसके चलते बहुत बातचीत करना संभव नहीं है। मद्रास में समय पर पैसा दे दिया जाता है इसलिए निरंजन वहां काम करने जाते हैं। लेकिन यहां एक बड़ी तकलीफ़ यह है कि जिस कंपनी में निरंजन काम करते हैं, वहां कंपनी के स्थायी मज़दूरों का यूनियन है। जो भी यूनियन से जुड़ा होता है उसका एक कार्ड बनता है। इसका फायदा ये होता है कि वेतन का मूल्य और काम के घंटे निश्चित होते हैं, साथ ही साल में छुट्टी भी मिलती है और बोनस भी दिया जाता है। लेकिन निरंजन जैसे ठेके पर काम कर रहे लोगों का कार्ड नहीं बनाया जाता। वे दो बार आवेदन दे चुके हैं पर दोनों बार खारिज हो गया है। इन्हें अस्थायी काम ही मिलता है। मालिकों को अस्थायी मज़दूर रखना सस्ता पड़ता है जिनसे वह मनचाहे ढंग से काम करा सकते हैं।

मज़दूरी के लिए लुधियाना और मद्रास में संघर्ष करने के साथ साथ निरंजन ने अपने गाँव में पंचायत के वार्ड सदस्य का चुनाव लड़ा जिसमें उन्हें जीत भी हासिल हुई। इसी बीच वह जन जागरण शक्ति संगठन के काम मांगो अभियान से भी जुड़े, राशन के लिए डीलर से लड़ाई लड़ी। इन सभी मामलों में निरंजन का कहना है कि संगठित होना बहुत आवश्यक है। वे कहते हैं "जब भी हमने ग्राम स्तर से ब्लॉक स्तर पर एकजुट होकर आवाज़ उठाई, हमने अपनी बात मनवाई है"। सोशल ऑडिट से जब पता चला कि नरेगा के तहत लोगों के खातों में जमा हुई राशि को कोई और ही निकाल लेता है जिसकी खबर उन्हें खुद नहीं होती, तब मुखिया के खिलाफ कार्रवाई की गई। निरंजन का मानना है कि ये सब तब तक खत्म नहीं होगा जब तक लोग खुद जागरूक होकर आवाज़ नहीं उठाएंगे।

साथी निरंजन की तस्वीर

अब हम सब शाहीन हैं और हर जगह बाग़

एन.आर.सी., एन.पी.आर. और सी.ए.ए. के ख़िलाफ़ बड़े पैमाने पर आंदोलन की शुरुआत आसाम से हुई। इसके विरुद्ध आसाम में हज़ारों की संख्या में लोग सड़कों पर उतर आए। और धीरे-धीरे आसाम में लगी आग पूरे देश में फेल गई। एक बड़ा विरोध देश के युवाओं ने किया और कई यूनिवर्सिटियों में छात्रों ने शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन किया। देश के संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत विरोध प्रदर्शन करना जनता का हक़ है। लेकिन सरकार ने इसे देशद्रोह का नाम देकर इन उठती हुई आवाज़ों पर पुलिस कार्रवाई करनी शुरू की। इसका सबसे दमनकारी असर भाजपा शासित राज्यों में देखने को मिला। दिल्ली में जामिया नामक विश्वविद्यालय में पुलिस रात में जबरन घुसी और छात्रों को बुरी तरह पीटा गया। हॉस्टलों में

तोड़-फोड़ की गई। सरकार के द्वारा ये ग़लत अफ़वाह फैलाई गई कि छात्रों ने हिंसा की शुरुआत की जब कि ऐसे कई वीडियो आए जिसमें साफ़ ज़ाहिर था कि पुलिस के द्वारा ये कार्रवाई शांतिपूर्ण चल रहे आंदोलन पर की गई। इसके अलावा बड़ा दमन उत्तर प्रदेश में किया गया।

लोकतांत्रिक अधिकारों पर काम करने वाले एक संगठन द्वारा की गई जाँच में पाया गया कि जामिया यूनिवर्सिटी के गेट के ताले टूटे हुए थे, खिड़कियाँ टूटी हुई थीं और आँसू गैस के गोले पड़े हुए थे। इस घटना के दो दिन बाद जब वापस छात्र और शिक्षक शांतिपूर्ण तरीक़े से नागरिकता संशोधन क़ानून के विरोध में एकत्रित हुए, फिर पुलिस द्वारा छात्रों पर गोलियाँ चलाईं गईं। इसमें एक छात्र को गोली लगी और एक की आँख की रौशनी चली गई। इसके बाद जब बच्चे यूनिवर्सिटी में चले गए, तब भी पुलिस बिना किसी इजाज़त के अंदर घुस गई। लाइब्रेरी एवं हॉस्टल में जो भी मिला उस बेरहमी से मारा पीटा गया।

इसके अलावा उत्तर प्रदेश में पुलिस द्वारा सारी हदें पार कर दी गईं। पुलिस द्वारा शांतिपूर्ण विरोध कर रहे लोगों पर अत्यधिक बल का उपयोग किया गया ताकि लोग डर जाएँ और कहीं कोई शांतिपूर्ण तरीक़े से भी विरोध न कर सके। पुलिस द्वारा गोलियाँ चलाई गईं जिसमें कम-से-कम 21 लोगों की जान चली गई। इसमें एक तो 8 साल का बच्चा था। इसके अलावा लोगों पर ग़लत केस दायर किए गए जिसमें एक गाड़ी चलाने वाला है जो दिल्ली का रहना वाला है लेकिन पुलिस द्वारा उसे मुख्य अपराधी घोषित कर दिया गया। उत्तर प्रदेश में क़रीब एक लाख लोगों पर केस दर्ज किया गया है। वहीं उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री आदित्यनाथ द्वारा बयान दिया जा रहा है कि विरोध करने वालों से 'बदला लिया जाएगा'। कई जगहों पर पुलिस द्वारा प्राइवेट अस्पतालों को सख़्त हिदायत दी गई कि वे घायलों को जगह न दें। यदि कोई वकील मिलने गया तो उसे भी हिरासत में ले लिया गया।

इन सभी जगहों पर एक शिकायत सभी के द्वारा यह की गई कि पुलिस ने मुसलामानों पर कार्रवाई करते हुए ग़लत शब्दों का उपयोग किया जैसे; जिहादी, देशद्रोही आदि जो ये दिखाता है कि किस प्रकार पुलिस मुसलमान विरोधी मानसिकता से पीड़ित है। दूसरी बात ये कि ये हिंसा वहीं हुई है जहाँ पुलिस बीजेपी सरकार के अधीन है जैसे उत्तरप्रदेश, आसाम, कर्नाटक या दिल्ली।

मगर जैसा कि पाश नाम के एक कवि ने लिखा था 'मैं घास हूँ, मैं अपना काम करूँगा। मैं तुम्हारे सारे किए-धरे पर उग आऊँगा", उसी प्रकार इस बर्बरता और दमन के ख़िलाफ़ लाखों आवाज़ें उठ रही हैं। देश के हर कोने में यूनिवर्सिटी से लेकर कॉलेजों तक, शहरों से लेकर ग्रामीण इलाक़ों तक लाखों लोग सड़कों पर उतर रहे हैं। पूर्णिया में एनआरसी-सीएए विरोधी संयुक्त मोर्चा (जिसमें जन जागरण शक्ति संगठन की सक्रिय भागीदारी थी) के द्वारा कार्यक्रम किया गया जिसमें मुख्य वक़्ता कन्हैया थे। इस सभा में अनुमानित एक लाख लोगों ने शिरकत की। दिल्ली, बैंगलोर, मुंबई, कलकत्ता, जयपुर, हैदराबाद और कई बड़े शहरों में लाखों की संख्या में लोग सड़कों पर आए। इस आंदोलन को एक अलग दिशा मिली जब जामिया नगर में पुलीस बर्बरता के बाद वहाँ की महिलाओं ने शाहीन बाग़ नाम के स्थान पर एक अनिश्चितकालीन धरना शुरू किया। कुछ महिलाएँ आकर शांतिपूर्वक ढंग से सड़क पर बैठ गईं, दिन गुज़रे, हफ़्ते गुज़रे लेकिन ये नहीं हिलीं। कुछ ही दिनों में इसकी लोकप्रियता इस क़दर बढ़ गई कि इसी तर्ज़ पर और भी जगहों पर महिलाओं द्वारा ऐसे धरने चालू हुए जिसमें सब्ज़ी बाग़ (पटना), शांति बाग़ (गया), मधुबनी, अररिया, सर्कस पार्क (कलकत्ता), रौशन बाग़ (इलाहाबाद), धुले (महाराष्ट्र), ऐल्बर्ट हाल (जयपुर) इत्यादि हैं। बिहार में बड़े पैमाने पर एक राज्य-स्तरीय यात्रा निकाली गयी जिसमें बिहार एनपीआर-एनआरसी-सीएए विरोधी संघर्ष मोर्चा से जुड़े संगठनों और व्यक्तियों ने बिहार के सभी जिलों में ब्राह्मण कर इस मुद्दे के बारे में जागरूकता फैलाई। युवा नेता कन्हैया कुमार भी 'जन-गन-मन' यात्रा में शुरू से अंत तक शामिल थे। यात्रा का समापन पटना के गाँधी मैदान में एक बड़ी सभा के रूप में हुए। 27 फरवरी की पटना महारैली कई मायिनों में एतिहासिक रही जब लाखों की संख्या में लोग एनआरसी और सीएए के खिलाफ अपनी आवाज़ दर्ज करने गाँधी मैदान पहुंचे।

मगर सरकारें शक्ति के मद में इस प्रकार चूर हैं कि अपनी ही जनता को सुनने को तैयार नहीं हैं। मोदी जब रेडियो पर आकर बात कर सकते हैं तो क्या वो इन जगहों पर जाकर सवालों के जवाब नहीं दे सकते? जो भी हो इन आंदोलनों ने ये भी सवाल उठाया है कि हिंदू-मुस्लिम राजनीति से देश नहीं चल सकता। युवाओं को नौकरियाँ चाहिए। महँगाई की मार से सब त्रस्त हैं। प्याज़, तेल या सिलेंडर सभी के दाम आसमान छू रहे हैं। देश भर के लोग सभी धार्मिक पहचान से ऊपर उठकर देश और संविधान को बचाने के लिए संघर्षरत हैं। इसीलिए इन आंदोलनों में अम्बेडकर, गांधी, सावित्रीबाई और फ़ातिमा शेख़ के विचारों को ओढ़कर लोग ये लड़ाई लड़ रहे हैं।

नागरिकता के बहाने देश को तोड़ने की कोशिश

-आशीष रंजन

नागरिकता क़ानून और एन.आर.सी. के ख़िलाफ़ कार्यक्रम में शामिल होने की क़ीमत 18 साल के आमिर और 19 वर्ष के दीपांजल को जान गँवाकर चुकानी पड़ी। दक्षिण के मैंगलोर से लेकर उत्तर प्रदेश और पूरब में असम तक एन.आर.सी., नागरिकता क़ानून और एन.पी.आर. के विरोध में चल रहे आंदोलनों में 25 से अधिक नौजवानों की जान जा चुकी है। ज़्यादातर मारे गए नौजवान पुलिस की गोली या पिटाई से मरे हैं। पूरे देश में करोड़ों लोग सड़कों पर उतर आए हैं। पूर्णिया में 16 दिसंबर को एक लाख लोग सड़क पर इस क़ानून के ख़िलाफ़ उतरे। आख़िर क्यों?

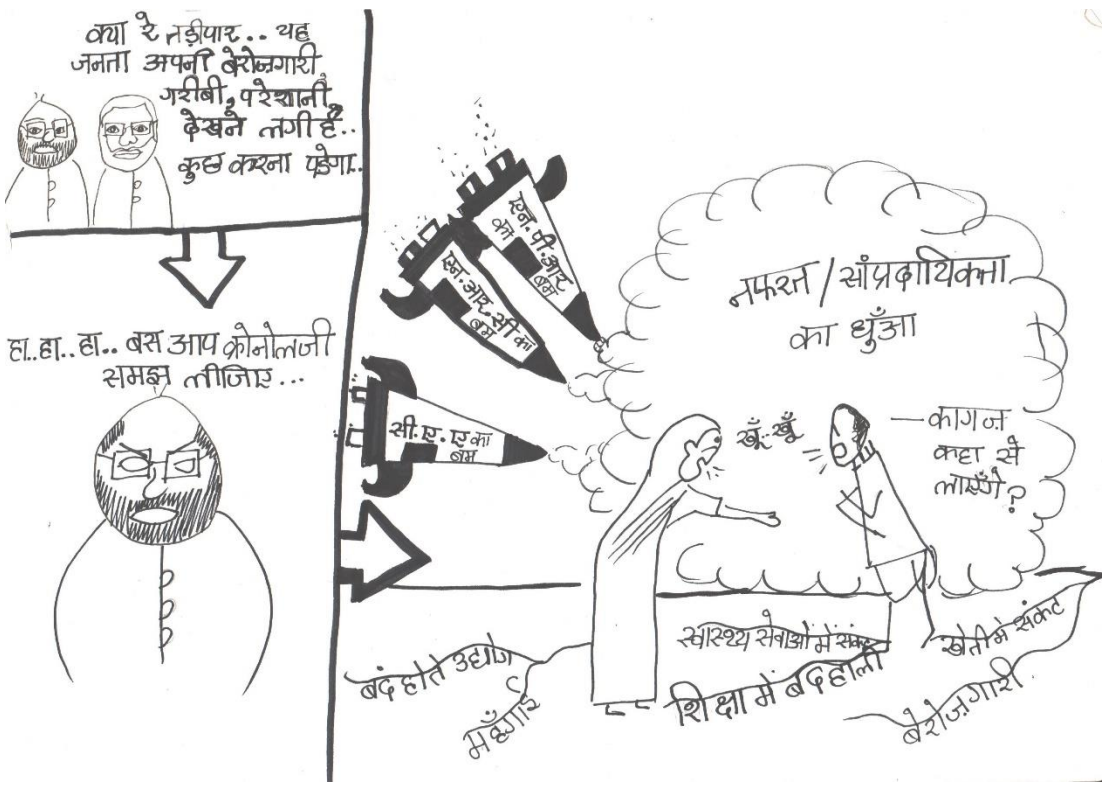

एक ऐसे समय में जब देश में पिछले 45 सालों में सबसे ज़्यादा बेरोज़गारी है, साग-सब्ज़ी-प्याज़ के दाम में आग लगी हुई है और देश की अर्थव्यवस्था ख़राब स्थिति में है, तो नागरिकता का मुद्दा खड़ा करना किसकी भलाई की ख़ातिर है? कन्हैया कुमार ने अपने एक भाषण में ठीक ही कहा कि अगर कोई बच्चा भूख से रो रहा हो और उसे उठाकर अलमारी पर बैठा दिया जाए तो वह भूख भूलकर अलमारी से उतरने के लिए रोने लगेगा।

भाजपा सरकार ने ठीक यही चाल चली है। आर्थिक समस्या के बजाय अब लोग नागरिकता क़ानून और एन.आर.सी. को लेकर चिंतित हैं। असम में बांग्ला बोलने वालों के ख़िलाफ़ हुए जन आंदोलन के चलते और सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के बाद वहाँ नागरिकता सूची बनी। वहाँ 19 लाख लोग ऐसे पाए गए जिनके पास नागरिकता साबित करने के लिए 50 साल पुराना काग़ज़ नहीं था। वहाँ 24 मार्च 1971 के पहले के काग़ज़ के आधार पर नागरिकता सूची बनी। इन 19 लाख लोगों में क़रीब 14 लाख लोग हिन्दू ही निकले। इससे भाजपा द्वारा प्रचारित झूठ का पोल खुल गया कि हमारे यहाँ बांग्लादेश से बड़ी संख्या में मुसलमान घुस आए हैं। ऐसी परिस्थिति में सरकार ने नागरिकता संशोधन क़ानून (सी.ए.ए) लाया जिसके तहत पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफ़ग़ानिस्तान से आए हुए हिन्दू, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध और इसाई धर्म के लोगों को 6 साल में नागरिकता दी जा सकेगी। सिर्फ़ मुसलामानों को जान-बूझकर छोड़ दिया गया। धर्म के नाम पर नागरिकता तय करना अपने देश की धर्मनिरपेक्षता की भावना के ख़िलाफ़ है। आज़ादी की लड़ाई के वक़्त ही हमने तय किया था कि नागरिकता को धर्म से नहीं जोड़ा जाएगा।

भाजपा का मत है कि वह धर्म की राजनीति नहीं कर रही बल्कि इन देशों में अल्पसंख्यक प्रताड़ित हैं इसलिए उन्हें नागरिकता देकर एक अच्छा काम कर रही है। ऐसे में उनसे यह पूछना चाहिए कि "अहमदिया" मुसलमान जिन्हें पाकिस्तान में प्रताड़ित किया गया है या फिर बर्मा से आए प्रताड़ित रोहिंग्या को क्यों नहीं शामिल किया गया? भाजपा दिखाना चाहती है कि वह बाहर से आए या सताए हुए ग़ैर मुसलामानों को नागरिकता देगी पर यहाँ भी वह धोखा दे जाती है क्योंकि नेपाल से आए गोरखा, श्रीलंका से आए तमिल हिन्दू, या तिब्बती लोगों को शामिल नहीं करती है जो लाखों की संख्या में पुश्तों से यहाँ रहते हैं। अगर भाजपा सच में दूसरे देशों में प्रताड़ित लोगों को नागिकता देना चाहती तो नागरिकता क़ानून में विशेष धर्मों का नाम नहीं लेती।

असम में जब एन.आर.सी हुआ तो वहाँ के 3 करोड़ 30 लाख लोगों ने अपना पचास साल पहले का काग़ज़ अपने-अपने ज़िले के सरकारी दफ़्तरों में जमा किया। सरकार ने क़रीब 1600 करोड़ रुपये ख़र्च किया। 50 हज़ार शिक्षक इस काम में लगे और हज़ारों करोड़ रुपये लोगों के काग़ज़ बनाने और नागरिकता के लिए केस लड़ने में ख़र्च हुए। सरकार के अनुसार यह प्रक्रिया नेशनल पोपुलेशन रजिस्टर (एन.पी.आर.) के अंतर्गत होगी। इसमें सरकार के लोग पहले आपके घर आएँगे और आपसे कुछ सवाल पूछेंगे। उस सवाल में आपको अपने माँ-बाप के बारे में भी जानकारी देनी होगी जो अब तक जनगणना में नहीं होती थी। इस सूचना के आधार पर सरकारी बाबू ऐसे लोगों को चिह्नित करेंगे जो उनके हिसाब से "संदिग्ध" हैं, यानी जो सरकार के हिसाब से बाहर के देश के हो सकते हैं।

ऐसे में, देश में रहने वाले वंचित समुदाय के लोग ख़ासकर दलित, आदिवासी, महिला, भूमिहीन, अशिक्षित लोग जिनके पास पुराने काग़ज़ नहीं हैं उन्हें ख़ास परेशानी का सामना करना पड़ेगा क्योंकि वे ही काग़ज़ में ज़्यादा कमज़ोर होते हैं। बाढ़ और आगजनी से प्रभावित लोग जिनका काग़ज़ बह गया या जल गया वह काग़ज़ बनाने में ही परेशान रहेंगे। पूरा देश अब अपने काग़ज़ जुटाने में लग जाएगा। अपने ही देश में आपको साबित करना होगा कि आप यहीं के हैं। जिनका काग़ज़ पर नाम सही नहीं है उन्हें उसी के चलते संदेह के घेरे में डाल दिया जाएगा। चंद सरकारी बाबू काग़ज़ के आधार पर हमारी नागरिकता तय करेंगे। ऐसे लोग जो काग़ज़ के माध्यम से अपनी नागरिकता साबित नहीं कर पाएँगे उन्हें क़ैदख़ाने में रखा जा सकता है। अगर ऐसे लोग ग़ैर मुस्लिम हैं और अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के हैं तो उन्हें जेल नहीं जाना पड़ेगा पर उनकी भी नागरिकता रद्द की जाएगी और फिर से नागरिकता लेने की प्रक्रिया में जाना पड़ेगा। वैसे मुसलमानों के लिए जो काग़ज़ से नागरिकता साबित नहीं कर पाएँगे उनके लिए तो कोई विकल्प ही नहीं रहेगा।

यही कारण है कि देश के लाखों लोग सरकार की इस नीति का विरोध कर रहे हैं। पूर्णिया में कन्हैया कुमार की बात हो या फुलवारी के आमिर की जिसका परिवार पुश्तों से यहीं रह रहा है, सभी आंदोलनकारी इस जन विरोधी क़ानून के विरोध में सड़कों पर उतरे हैं। अब सवाल यह है कि क्या हम आमिर की शहादत बेकार जाने देंगे या फिर भाजपा की इस चाल को नाकाम करेंगे?

(आशीष रंजन जन जागरण शक्ति संगठन से जुड़े हैं। अगर आप लेखक को इस मुद्दे पर बात रखते हुए सुनना और देखना चाहते हैं तो इस लिंक पर क्लिक करें और लुत्फ़ उठाएं। https://youtu.be/MODttTk1cmg *)*

राम नाम सत्त है

-हर्फ़

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

पंडीजी ने हिलते-डोलते कहा और खैनी के लिए हाथ आगे बढ़ाया। चेले ने झट से हाथ पर खैनी रख दी। पंडीजी ने खैनी को ऐसी अदा से मसूड़ों से चिपकाया की इमरान हाशमी भी शर्मा जाए।

चेले ने शान्ति भंग करते हुए सवाल किया, इसका मतलब क्या हुआ परभू?

मतलब ई है बेटा कि बंशीधर सब संभाल लेवेंगे तुम बस भजन में ध्यान लगाओ।

पाल्टी वाले तो कहे रहे हैं कि सियाराम जी का भजन करो, चेले ने आशंकित सा सवाल किया आप कह रहे हैं बंशीधर संभाल लेंगे। दोनों को अगर लगा कि डिपार्ट दोसरा (दूसरा) का है तब?

ऊ लोग बेसी टी।भी। (टेलिविज़न) देखने के चलते बौरा गए हैं। राम जी का डिविजन शुरू होता है फैजाबाद से, हम लोग हैं जनपद मथुरा में, गाँव पर होते तुम तो हम कहते चंडी माई का पाठ करो। ऊ एरिया मंगला जी का है।

बाकी देस का अगर सियाराम जी देख रहे हैं त हम लोग का भी देख लेते। चेले ने मायूस होते हुए कहा।

बुड़बक कहाँ के, राम जी हैं सत्मां (सातवाँ) अवतार और किसन जी हैं अठमां (आठवाँ)। मने राम जी बड़े हैं। बड़े-बड़े लोगों के पास बहुत फाइल रहता है। कहीं इधर से उधर हो गया तो बीमारी तुम को खा जायेगा। बूझे? एरिया जिसका हो भक्ति उसी का किया जाता है।

बाकी बातों का तो पता नहीं लेकिन यह बात चेला बखूबी समझता था कि इलाका जिसका हो भक्ति उसी की करनी चाहिए। उसने आगे कोई सवाल नहीं किया, अपने परभू के बोलने का इंतज़ार किया।

देखो राम जी का प्रचार ज्यादा है। उनका इलेक्शन ड्यूटी भी लगता है। अभी दिल्ली में टाउन ड्यूटी भी करना पड़ा। उनके पास बहुत लोग का अर्जी रहता है रामायण देख के और लोग बौरा गया है। बीमारी खतरनाक है, ऐसा टाइम पे मामला गड़बड़ा सकता है। लच्छमन जी के केस में हनुमान जी बंदोबस्त ड्यूटी पे थे तो संभाल लिए नहीं तो स्पॉट डेथ हो जाता। किसन जी का दूध-घी वाला देह है। उनके जैसा बनोगे तो बीमारी दूर से ही डर के भाग जायेगा। पंडीजी ने समझाने के भाव से कहा।

चेला अब कुछ-कुछ समझने लगा था लेकिन उसे यह बात खटक रही थी कि वह अपने गुरु की बात मान कर पाल्टी वालों के खिलाफ जा रहा था। वह नियमित रूप से पाल्टी की संध्या सभा में जाता था। वहां सब उसके दोस्त थे लेकिन हम-प्याला और हम-निवाला नहीं थे क्योंकि उसकी जात का कुछ अता-पता नहीं था। उसने शाम होने का इंतज़ार किया और संध्या सभा में दोस्तों को बताया कि परभू कह रहे हैं कि बीमारी खतरनाक है ऐसे में अपने डिविज़न के अराध्य को पूजना बेहतर होगा। पाल्टी वालों को भी बात में दम लगा। मगर अचानक से इष्ट देव बदल लेना तो कोई बात नहीं हुई। सब चिंतित हो गए कि करें तो करें क्या, बोलें तो बोलें क्या?

फिर किसी ने सुझाव दिया कि क्यों न पाल्टी गो मूत्र सभा का आयोजन करे। कृष्ण जी को दूध, दही आदि पसंद थे मतलब काऊ प्रोडक्ट्स उन्हें भाते थे। गो मूत्र इसी श्रंखला में आता है और पाल्टी की लाइन के साथ भी जाता है। अलगे ही दिन पाल्टी ने धूम-धाम से जनपद स्तर पर गो मूत्र सभा का आयोजन किया। इसमें ज्यादा लोग तो नहीं आये पर संध्या सभा के सभी सदस्यों का हाज़िरी लगाना जरूरी था सो चेला भी गया और उसने गो मूत्र का सेवन भी किया। गो मूत्र देखने में बिलकुल संतरे जैसा लग रहा था। जिसका अद्धा वो रोज सोने से पहले निपटा देता था, बस स्वाद थोड़ा तेज़ था। फिर भी उसने 2 गिलास गटक लिए क्योंकि सभापति जी ने एक गिलास उसकी वाह-वाही में सबकी ओर बढ़ाया था। और एक गिलास पीना सबके लिए अनिवार्य था।

अगले दिन कोहराम मच गया। अख़बार में खबर छपी कि जितने भी लोग गो मूत्र सभा में गए थे सबको बीमारी ने अपनी चपेट में ले लिया। सरकारी अस्पताल में इस बीमारी से लड़ने के कोई साधन मौजूद नहीं थे। डॉक्टर को पाल्टी वालों ने पहले जी जेल भिजवा दिया था क्योंकि वे आक्सीजन सिलिंडर की चोरी पर रोक लगाने लगे थे जिससे पाल्टी के कुछ लोगों का नुक्सान हो रहा था। डॉक्टर और दवा के अभाव में सब राम जी को प्यारे हो गए।

जब शव यात्रा निकली तब लोगों ने राम नाम सत्त है का जाप किया। आखिर उह लोक में डिपार्ट वही देखते हैं।

हैदराबाद एनकाउंटर

27 नवम्बर की रात। हैदराबाद में एक महिला डॉक्टर काम से वापस घर आ रही थी। रास्ते में उसका स्कूटर बंद हो गया। वो फ़ोन पर अपने घरवालों से बात कर रही थी और टोल नाके के पास सुनसान सड़क पर मौजूद कुछ लोगों से मदद माँग रही थी। अचानक उसके घरवालों का उससे संपर्क टूट गया। उन्होंने रात 11 बजे पुलिस थाने में शिकायत की पर सुबह के तीन बजे तक पुलिस उस महिला डॉक्टर को ढूँढ़ने नहीं निकली। 28 नवम्बर की सुबह। पुलिस को टोल नाके से कुछ दूर उस का जला हुआ शरीर मिला। जाँच-पड़ताल से यह भी पता चला कि जलाने से पहले उसके साथ निर्मम बलात्कार किया गया था। 29 नवम्बर को सीसीटीवी कैमरा देखकर और उस जगह पर मौजूद लोगों के बयान के आधार पर पुलिस ने 20 से 24 साल के बीच की उम्र के चार लोगों को आरोपी के रूप में गिरफ़्तार भी कर लिया। 6 दिसंबर की सुबह। हैदराबाद पुलिस इन चार तथाकथित आरोपियों को घटनास्थल पर ले गई और वहाँ पुलिस के हाथों उनकी हत्या हो गई। पुलिस के अनुसार वे भागने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने पुलिस का हथियार छीनने का प्रयास किया, इस दौरान पुलीस वाले अपनी जान बचाने के लिए इनसे मुठभेड़ करते हैं और इसी दौरान पुलिस की फ़ायरिंग में उन चारों की मृत्यु हो गई।

कुछ लोगों को यह ज़रूर लगा कि उस डॉक्टर पर हुई हिंसा के मामले में जल्द-से-जल्द न्याय हुआ। डॉक्टर की हत्या हुई तो आरोपी मारे गए। ऐसे लोगों के साथ ऐसा ही होना चाहिए। ख़ून का बदला ख़ून वाली सोच क्या सच में न्याय के हक़ में सोच है या उसके ठीक विपरीत? कोर्ट में सारी सुनवाई हुए बग़ैर क्या हम मानते हैं कि जिनको पकड़ा गया और मारा गया वे ही इस हिंसा के लिए ज़िम्मेदार थे? हमारी नज़र में यह न्याय तो क़तई नहीं है। दरअसल इस पूरी घटना को समझें तो लगता है कि न्याय की व्यवस्था के साथ भी अन्याय हुआ है।

सबसे पहली बात तो यह है कि वे महज़ आरोपी थे। उनका गुनाह साबित नहीं हुआ था। एक सही न्याय व्यवस्था वही होती है जो एक प्रक्रिया के तहत गुनाह साबित करती है, जिसमें आरोपी के साथ भी न्याय होता है और उन्हें भी अपनी बात रखने का पूरा मौक़ा मिलता है। इस क़िस्से में वे गुनाहगार थे भी या नहीं यह जानने का कोई तरीक़ा अब हमारे पास नहीं है। जो पुलिस शिकायत मिलने के बाद भी चार घंटे तक उस डॉक्टर को ढूँढ़ने नहीं निकली वह इस तरह से ख़ून ख़राबा कर के अपनी नाकामी छिपाने का प्रयास कर रही है। *(शेष पृष्ट 9 पर)*

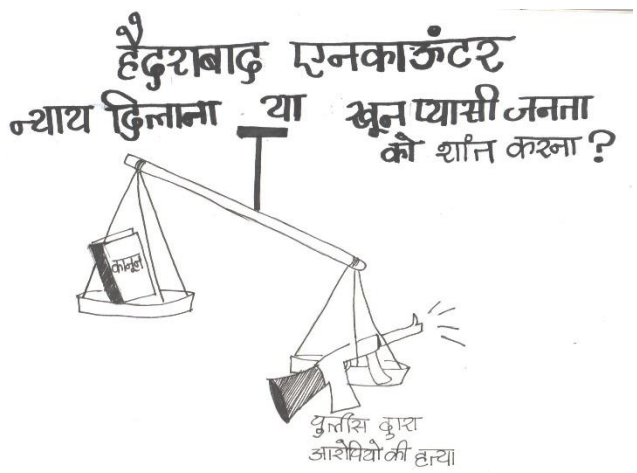

कल, आज और कल

एक था स्कूल

आज आपको बिहार के समस्तीपुर जिला के किसी गाँव की एक स्कूल की बात बताते हैं। ऐसे ही घूमते-घूमते किसी रोज़ वहां पहुँच गए थे। तब गाँव के बुजुर्गों से गप्प करते हुए स्थानीय किसी के खटिये पर बैठे गरम रोटी भुजिया खाते हुए रात में उसी खटिये पर चादर ओढ़े सपना देखते हुए किस्से के अलग-अलग हिस्से सामने आये। लोकल साथियों का कहना है कहानी नहीं, यह सौ टका सच्ची बात है। कभी भूले भटके आप भी वहां पहुँच गए तो खुद ही जांच सकते हैं।

यह स्कूल हमेशा से स्कूल नहीं था। शुरू में यह किसी बड़े ज़मींदार का घर हुआ करता था। घर बना गढ़, आज़ादी के आन्दोलन का जब बड़े ज़मींदार का बेटा निकल गया बड़ा समाजवादी क्रांतिकारी। देश आज़ाद हुआ 1947 में। क्रांतिकारी भी उसके कुछ साल बाद दुनिया से आज़ाद हो गए। अपने जीवनकाल में हमारे समाजवादी क्रांतिकारी अपने उस महल में बच्चों को पढ़ाया करते थे। क्रांतिकारी गुज़र गए। देश बदल गया। पर उस घर में पढ़ने-पढ़ाने की परंपरा चालू रही। बिन वारिस क्रांतिकारी के बाप-दादा की परती पड़ी हुई ज़मीन पर एक दो कर के भूमिहीन मजदूर बसने लगे। आज वहां सघन राम टोला बसा हुआ है। टोले के बीच में स्कूल। स्कूल में भूत। जी हाँ आपने बिल्कुल ठीक पढ़ा। वहां के लोगों का कहना है कि स्कूल बच्चों को खा जाता था। ब्राह्मण-भूमिहार तो राम टोला हो कर गुज़रते भी नहीं थे, शायद उनको भी भूत से डर लगता था। उनके बच्चे किसी महर्षि महंत वाले शाकाहारी अंग्रेजी स्कूल में जाते थे। कहाँ और कब से यह भूत वाली बात चालू हुई, नहीं मालूम पर धीरे-धीरे राम टोला के बिचारे बच्चे भी स्कूल जाना बंद कर दिए।

आखिरकार, बहुत सोच-विचार कर गाँव के बड़े बुज़ुर्ग स्कूल से भूत भगाने के लिए बड़ी पूजा का आयोजन किये। अगल-बगल के पांच गाँव से बड़े-बड़े पंडित बुलाये गए। फूल-फल-धूप-धूना का ढेर लग गया। मुखिया, सरपंच, थानेदार, पंडित, मास्टर सब मिल कर स्कूल गए। मन्त्र-तंत्र-यन्त्र कर स्कूल से पूछे "रे स्कूल! तुझे इतनी भूख क्यों है जो तू बच्चों को खा जाता है?" स्कूल के अन्दर से गमगमाता हुई आवाज़ आई, "मालिक हमको क्या पड़ी है कि हम बच्चों को खा जाएँ? वह तो मुझे भूख लगती है तो खाना खोजता हूँ। ठीक से दिखाई नहीं पड़ता है तो जो मुँह में आया उसे निगल गया। इसमें मेरी क्या गलती है मालिक?" "बात तो सही है। स्कूल में रौशनी का बंदोबस्त नहीं है। स्कूल बिचारे को कैसे दिखेगा? चलो लाइट लगवाया जाए।" सब ने कहा। सरकारी फण्ड से पैसा आया, लोगों से चंदा किया गया। स्कूल में बिजली का कनेक्शन लिया गया, ग्राउंड में स्ट्रीट लैंप और छत पर सूरज की रौशनी से उर्जा निकालने वाली प्लेटें लगी। सब लोग आश्वस्त हो कर अपने घर लौट गए। स्कूल फिर से चालु हुआ। कुछ दिन तो सब शांत रहा।

पर फिर से स्कूल बच्चों को निगल जाने लगा। डर के मारे बच्चें एकबार फिर स्कूल जाना बंद कर दिए। उनके घर वाले घबरा कर, हडबड़ा कर पहुँचे डीएम-डीडीसी के दफ्तर। इस बार दिन तारिख देख कर एक महायज्ञ का आयोजन किया गया। दूर देश के जाने माने योगी को बुलाया गया। हवन-कुंड में चन्दन के काठ की आग जली, उस में तुलसी और गंगा जल छिड़का गया। कीर्तन गाये गए। एक बिचारे बकरे की बलि भी चढ़ गयी। स्कूल से फिर से सवाल किया गया। "रे स्कूल, अब तो बिजली भी आ गयी है। अब भी क्यों बच्चा खा रहे हो? स्कूल ने जवाब दिया, "मालिक, शरीर मेरा टूटा फूटा पुराना सा है। मूसा-छछुंदर सब घर बना कर मुझ में रहते हैं। जब वह मेरे ऊपर चढ़ कर भागते हैं तब गुदगुदी लगती है। गुदगुदी लगती है तो मैं थरथराने लगता हूँ। हंसी के मारे जीभ लपलपाने लगती है। गुदगुदी, थरथरी, लपलपी रोकने के लिए मुँह टीपता हूँ और उस समय कोई बच्चा या जानवर मुँह में पकड़ा गया तो बस फिर सीधा पेट में! अब इसमें मेरी क्या गलती?" यह सुन कर, स्कूल को दोबारा गुदगुदी, थरथरी, लपलपी न लग पाए, इस कोशिश में पूरा गाँव जुट गया। मंत्री साहब के पैसे से बिल्डिंग की मरम्मत की गयी। आसपास के जंगली झाड़ काटे गए। नरेगा योजना में टोले के मज़दूर साथी खट कर चकाचक नया बाउंड्री वाल बनाये। सर्व शिक्षा अभियान का गुलाबी पेंट चढ़ा दीवार पर, दरवाज़े के ऊपर नया बोर्ड लगाया गया।

स्कूल भी खुश। कुछ दिन तक सब बढ़िया चला। फिर से स्कूल बच्चा खाने लगा। इस बार गाँव की सारी महिलाएँ बड़ी बेबस हो कर, गुस्सा और दुःख जताते हुए स्कूल के पास पहुचीं, बोली, "रे स्कूल! तेरे पास हम हमारे बच्चों को भेजते हैं। इस भरोसे की वे पढेंगे-लिखेंगे। उनका दिमाग खुलेगा। अपनी ज़िन्दगी और समाज को सुधारेंगे। हमारे भी दुःख दर्द दूर करेंगे। पर यहाँ तो तुम हमारे दुःख दर्द बढाने पर तुले हुए हो। हमारे बच्चों को क्यों खा जाते हो? कैसे रोकें तुम्हें?" स्कूल गंभीर सोच में चला गया। फिर कुछ देर बाद बोला, "हाँ! एक रास्ता है। वैसे भी आप सब के बच्चे दुबले-पतले कुपोषित से हैं। इन्हें खा कर न पेट भरता है और न मन। साल में कम से कम एक बार कुछ ऐसा खिला दें जिससे शरीर मन और आत्मा तीनों को तृप्ति मिल जाए। सारा भूख मिट जाए। तब आपके बच्चों को तंग नहीं करूँगा।" बहुत सोच विचार के राम टोला की महिलाएं सौदे को पक्का कर आई।

तब से लेकर आज तक हर साल की पहली तारिख को, जब पूरी दुनिया जश्न मना रही होती है, तब गाँव की महिलाएं इलाके के सबसे मोटे ताज़े विद्वान पंडित को पकड़ कर लाती हैं और स्कूल को भोग में अर्पित कर देती हैं। कहते हैं, पिछले जन्मों की पुण्य से भर कर यह भारी भरकम ब्राह्मणगण दुनिया में आते हैं। शायद इन्हीं पुण्यों का देन होगा की एक एक करके उनके शहीद होने से गांव की परेशानी सच में दूर हुई। स्कूल शांत हुआ। महिलाओं और बच्चों के चेहरे पर मुस्कान वापस आई। यकीन न हो तो खुद जा कर पता कर लीजिये दोस्त। बस। पुण्य से परिपूर्ण ब्राह्मण पुरुष थोड़ा बच कर रहें!

(यह लेख शोहिनी द्वारा लिखा गया है। वह जन जागरण शक्ति संगठन से जुडी हैं।)

करो पढ़ाई लड़ने को, लड़ो समाज बदलने को!!

-विजय कुमार

सहरसा ज़िले में जन जागरण शक्ति संगठन द्वारा संघर्ष के साथ-साथ निर्माण का भी काम हो रहा है। सहरसा ज़िले के बरेठ पंचायत के अमृता गाँव में डॉक्टर मनोरंजन झा मेमोरियल ट्रस्ट के तहत एक लाइब्रेरी खोली गई है जहाँ प्रतिदिन 30-40 बच्चे आते हैं और जन जागरण शक्ति संगठन से जुड़े कार्यकर्ता उनके साथ समय बिताते हैं। उनको प्ले फ़ॉर पीस की तर्ज़ पर खेल सिखाए जाते हैं। इन खेलों में कहानी व गीत की सहायता से बच्चों में सामाजिक मुद्दों व एकता की समझ बनाई जाती है। अमृता गाँव के बच्चे लाइब्रेरी से जुड़ने के लिए इच्छुक रहते हैं लेकिन समाज का ढाँचा ऐसा बना हुआ है कि ग्रामीण इलाक़ों में लाइब्रेरी का क्या महत्व है, लोग इसको समझ नहीं पा रहे हैं। कार्यकर्ताओं की हमेशा कोशिश रहती है कि कैसे गाँव के बच्चे लाइब्रेरी जैसी जगहों से जुड़े रहें। मुझे लगता है कि जब बच्चे ख़ुद पढ़ने की आदत डालते हैं तो सोचना और सवाल करना ख़ुद-ब-ख़ुद शुरू कर देते हैं, जो आज की स्कूली व्यवस्था से नदारद हो चुकी है। इसके लिए बच्चों को कहानी सुनाई जाती है तथा आसान भाषा वाली किताबें भी दी जाती हैं। साथ ही हर महीने सोनवर्षा प्रखंड के हाई स्कूल फ़ील्ड में पिछले एक साल से संगठन द्वारा फ़ुटबॉल कैम्प चलाया जा रहा है। इस कैम्प से सभी समुदाय के बच्चे जुड़ते हैं। इस कैम्प में सोहा पंचायत के अलग-अलग वार्ड के 60 से 70 बच्चे हर महीने आते हैं। इस कैम्प के दौरान बच्चों को व्यायाम व दौड़ने के बाद फ़ुटबॉल खिलाया जाता है। वे सीखते हैं कि जीवन में अनुशासन और स्वास्थ्य का क्या महत्व है। इस कैम्प के दौरान बच्चों को पढ़ाई-लिखाई, सामाजिक मुद्दों और अपने हक़ के बारे में भी सिखाया जाता है। साथ ही संगठन के द्वारा समय-समय पर युवाओं की मीटिंग भी की जाती है जिसमें युवाओं से जुड़े मुद्दों पर चर्चा की जाती है। लेकिन इसको करने में रुकावटे भी हैं। इस इलाक़े में इतनी ख़राब शिक्षा व्यवस्था है कि सहरसा ज़िले के लगभग सभी बच्चे आठवीं क्लास तक गाँव में पढ़ाई पूरी कर कहीं शहर में रूम भाड़े पर लेकर पढ़ने के लिए चले जाते हैं या फिर पढ़ाई छोड़ देते हैं और कोई छोटा-मोटा काम पकड़ लेते हैं। सरकारी स्कूलों में न के बराबर पढ़ाई होती है जिसके कारण बच्चों को निजी ट्यूशन लगवाना पड़ता है या दूर शहर में जाना पड़ता है। इसमें लड़कियों के लिए तो बहुत मुश्किल हो जाती है। फिर भी हमारी लड़ाई जारी है, हम युवाओं को संगठित करने का निरंतर प्रयास कर रहे हैं ताकि आने वाली पीढ़ी को बेहतर समाज मिले।

(विजय कुमार जन जागरण शक्ति संगठन से जुड़े हैं।)

हम पढ़ेंगे साथी

उर्मिला पवार नामक एक दलित महिला लेखिका ने अपनी एक कहानी में महिला को भी एक जाति ही कहा है। लेखिका लिखती हैं किआप जब पैदा होते हैं तभी आपकी जाति तय कर दी जाती है। जाति का अर्थ है समाज में आपकी क्या जगह होगी। जाति व्यवस्था कहती थी कि आप जिस भी जाति में पैदा होंगे, उसी अनुसार आपको काम सौंप दिए जाएँगे। यदि आप दलित हैं तो ऊँची जाति के लिए मज़दूरी करेंगे या साफ़ सफ़ाई करेंगे। ब्राह्मण हैं तो पढ़ेंगे, पढ़ाएँगे और आराम फ़रमाएँगे। समय के साथ दलितों को छोड़कर बाक़ी जातियों ने आपस में काम की अदला-बदली शुरू की। इसीलिए दलितों को छोड़कर बाक़ी जातियों ने शिक्षा भी पाई और आगे भी बढ़े। महिला होना भी इसी जाति व्यवस्था के समान है। महिला पैदा होती है, उसके काम निश्चित कर दिए जाते हैं और शिक्षा से वंचित रखा जाता है।

हमारे समाज में ये माना जाता है कि महिला का काम खाना बनाना और घर की देखभाल करना है। पर क्या हमेशा से समाज में महिला की यही ज़िम्मेदारी रही है? आज से कई सौ साल पहले जब क़बीले हुआ करते थे, तब क़बीलों का नेतृत्व महिलाएँ करती थीं। तब महिला और पुरुष दोनों बाहर का काम भी करते थे और घर के अंदर का भी। जिस प्रकार जाति व्यवस्था आने से पहले ऐसा समाज था जिसमें कोई कुछ भी काम कर सकता था और कोई भेदभाव नहीं होता था, वैसा ही महिला-पुरुष के बीच भी था। लेकिन फिर जो क़बीले घुमंतू हुआ करते थे, उन्होंने बसना शुरू किया। ज़मीन समूह की न होकर निजी होनी शुरू हुई। खेती की शुरुआत हुई। फ़सल की ख़रीद फ़रोख़्त का दौर आया और महिलाओं को घर की ज़िम्मेदारी दी गई। महिलाओं को समय के साथ एक ही काम से जोड़ दिया गया और ये भी कहा गया कि इसके लिए इन्हें शिक्षा लेने की क्या ज़रूरत है। ठीक ऐसा ही जाति व्यवस्था में हुआ, जहाँ दलितों व पिछड़ों को ऐसा ही कहकर शिक्षा से वंचित रखा गया। भारतीय समाज में इस सोच को बढ़ावा देने का काम मनुस्मृति नामक किताब ने किया जिसकी तथाकथित ऊँची जाति के लोग पूजा करते हैं। इस किताब में लिखा है कि शूद्र और महिला केवल सेवा करने के लिए हैं और इन्हें आज़ाद नहीं छोड़ना चाहिए। इसी किताब को अम्बेडकर द्वारा जलाया गया था।

इसीलिए ये समझना ज़रूरी है कि एक लड़की जब पैदा होती है तब वह लड़के के बराबर होती है, लेकिन समाज ग़ैरबराबरी को पैदा करता है। उदाहरण के लिए एक लड़की को बचपन से ही घर के काम करने पड़ते हैं जैसे; झाड़ू लगाना, छोटे भाई बहन को खिलाना, गोबर उठाना, पानी भरना आदि। लड़का इस दौरान बाहर खेलता है, घूमता फिरता है और स्कूल जाता है। लड़की को सिखाया जाता है कैसे बैठना है, कैसे चलना है, कैसे बाहर कम निकलना है और लड़के को इसके उलट सिखाया जाता है। यहाँ तक कि लड़कों के लिए शब्द भी ऐसे प्रयोग होते हैं जैसे; मज़बूत, दबंग और लड़की के लिए नाज़ुक, शांत आदि। अगर लड़की को स्कूल भेजा भी जाता है तो कम उम्र में शादी कर दी जाती है। अगर स्कूल गाँव से दूर है तो लड़की का स्कूल जाना बिल्कुल बंद हो जाता है। यहाँ तक कि हमारे समाज में समझा जाता है कि लड़की अगर ज़्यादा पढ़ी लिखी हो तो शादी करने में लड़के वालों को आपत्ति होती है। इन सभी बातों से ये समझ आता है कि लड़का-लड़की के बीच बुनियादी अंतर समाज पैदा करता है और फिर लड़कियों और लड़कों में कुछ ख़ास व्यवहार को विकसित किया जाता है। इसीलिए कहते हैं लड़का-लड़की पैदा नहीं होते, बनाए जाते हैं। इसीलिए ये ख़ास ध्यान देने योग्य बात है कि जाति और महिला का स्थान समाज द्वारा निर्मित प्रक्रिया है और इसे समाज द्वारा तोड़ा भी जा सकता है।

मोसमात बुधिया शिक्षा निर्माण संगठन का सेंटर भी इसी तरह की एक जगह है जहाँ लड़के-लड़की मिलकर पढ़ाई करते हैं और समाज की इस दक़ियानूसी सोच को तोड़ते हैं। यहाँ काम का बँटवारा या रहन-सहन किसी लैंगिक आधार पर न होकर समान नियम के आधार पर होता है। समाज में ये भेदभाव रहन-सहन, पालन-पोषण, भाषा में रच बस गया है। इसकी जड़ों को काटने के लिए जागरूकता अभियान नाकाफ़ी हैं, जो सरकारें चलाती हैं। इसके लिए इस जीवनशैली और सोच पर एक साथ काम करने की ज़रूरत है जिसका उदाहरण संगठन का सेंटर है।

(अभिमन्यु ने ये लेख लिखा है। वह मोसमात बुधिया शिक्षा निर्माण संगठन से जुड़े हैं।)

सुर्ख़ होगा, सुर्ख़ होगा! एशिया सुर्ख़ होगा!!

-ज़फ़र इक़बाल

हाल ही में पाकिस्तान में छात्रों-छात्राओं ने जब ये नारा लगाया तब वहाँ की मीडिया और जनता के बीच काफ़ी हलचल देखी गई। लोग ये जानने के लिए बेचैन हुए कि आख़िर ये नारा किस तरह का नारा है। वैसे तो ये नारा पाकिस्तान के लिए नया नहीं था। 1960 के दशक में पाकिस्तान में जो छात्र आंदोलन हुए जिसके बाद फ़ौजी शासक अय्यूब ख़ान को सत्ता से बेदख़ल होना पड़ा, उस आंदोलन में ये नारा लगा था-"सुर्ख़ होगा, सुर्ख़ होगा! एशिया सुर्ख़ होगा!!" लेकिन तब से अब तक पाकिस्तान में दो पीढ़ियों से ज़्यादा का अंतर आ चुका है। इस नयी पीढ़ी के लोगों ने शायद ये नारा पहली बार सुना था इसलिए उनके भीतर जिज्ञासा भी थी और हैरानी भी।

जब उन छात्र-छात्राओं से पूछा गया कि आख़िर ये सुर्ख़ यानी लाल क्या है? क्यों वो एशिया महाद्वीप जिसका हिस्सा भात और पाकिस्तान दोनों हैं, उसके लाल हो जाने की बात कर रहे हैं? छात्रों ने बताया कि 1886 में शिकागो में मज़दूरों के एक शांतिपूर्ण जुलूस पर पुलीस के हमले में उनके सफ़ेद झंडे उन्हीं के ख़ून से लाल हुए, ये वही लाल है। ये लाल दुनिया भर के मेहनतकशों के आंदोलन का प्रतीक है जिसे उन्होंने बार-बार अपना ख़ून देकर सींचा है।

इन छात्रों की कुछ तात्कालिक माँगे हैं जैसे; विश्वविद्यालयों में छात्र संघ की बहाली, शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण का विरोध तथा विश्वविद्यालयों में महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा पर तुरंत रोक लगाना आदि। लेकिन उन छात्रों के पास अपनी कुछ दूरगामी योजनाएँ भी हैं जैसे पाकिस्तान में वर्ग आधारित राजनीति और सत्ता को स्थापित करना। जो सत्ता धर्म आधारित न हो बल्कि वर्ग आधारित हो। कुछ मुट्ठी भर लोगों के हाथों मे सारी शक्तियाँ, धन-संपदा केंद्रित न हों। जहाँ धर्म, पंथ, लिंग, क्षेत्र, भाषा आदि के नाम पर किसी तरह का भेद भाव न हो। और ये तभी संभव है जब इस पूरे क्षेत्र में ऐसी सोच रखने वाली शक्तियाँ शासन में आएँ। इसके लिए पूँजीवादी साम्राज्यवादी ताक़तों को भी पूरी तरह से उखाड़ फेंकना होगा जो इस क्षेत्र में युद्ध का उन्माद फैलाकर अपना हथियार बेचती हैं। इसलिए एक शांतिपूर्ण और सुखद भविष्य तभी संभव है जब पूरा ऐशिया सुर्ख़ हो। तब देशों की सीमाएँ होते हुए भी हम सभी मेहनतकश एक हो सकेंगे।

1984 में जनरल ज़ियाउल हक़ के सत्ता में आने के बाद विश्वविद्यालयों के छात्र संघों को भंग कर दिया। उसके बाद फिर कभी चुनाव नहीं हुए। ज़ियाउल हक़ को जमाते-इस्लामी जैसे संगठनों का समर्थन था। वहीं से पाकिस्तान में कट्टरपंथ और फिर आतंकवाद की शुरूआत होती है। छात्र संघ के प्रतिबंधित होने के बाद भी जमाते-इस्लामी सरकारी सहायता से अपनी गतिविधि चलाती रही। विश्वविद्यालय में ऐसे ही कट्टर सोच रखने वाले शिक्षकों की बहाली हुई। उसी के हिसाब से पाठ्यक्रम बनाया गया। प्रगतिशील सोच रखने वाले छात्रों और शिक्षकों पर हमले किए गए।

आज का भारत उसी मोड़ पर खड़ा है जहाँ 1980 के दशक में पाकिस्तान खड़ा था। हमारे देश में आरएसएस वही काम कर रही है जो पाकिस्तान में जामते-इस्लामी ने किया। आज हमारे देश के विश्वविद्यालय पर उसी तरह से हमला किया जा रहा है। सरकार की नीतियों के ख़िलाफ़ उठ रही आवाज़ों का दमन किया जा रहा है। छात्र संघों को काम नहीं करने दिया जा रहा। इसका उदहारण हमें जेएनयू में कम फ़ीस को पुन: बहाल करने के लिए लड़ रहे छात्रों पर हुए दमन में देखने को मिलता है। भारत में शायद ठीक उसी तरह ये सब नहीं किया जा सकता जिस तरह से पाकिस्तान में हुआ क्योंकि यहाँ कभी तानाशाही नहीं रही। लेकिन अभी चुनी हुई सरकार ही तानाशाही कर रही है इसलिए वो संकट यहाँ भी है।

हाल के दिनों में भारत के विश्वविद्यालयों में भी छात्र आंदोलनों मे तेज़ी आई है। शिक्षा के निजीकरण का सवाल एक बड़ा सवाल है जिसको लेकर दोनों देशों में व्यापक आंदोलन हुए हैं। दोनों देशों के छात्र आंदोलन को देखें तो उनकी माँगों में काफ़ी समानता है। उनकी सोच एक जैसी है। वो एक दूसरे के देश को अपना दुश्मन देश नहीं मानते, जैसा कि दोनों देशों की मीडिया बताती है। उनका साझा दुश्मन ये पूँजीवादी व्यवस्था है जो शिक्षा को भी अपने क़ब्ज़े में कर लेना चाहती है। जो हर तरह से तीसरी दुनिया के देशों को फिर से अपना उपनिवेश बना लेना चाहती है।

जब पाकिस्तान की छात्रा अरूज औरंगज़ेब ने पटना के शायर बिस्मिल अज़ीमाबादी की मशहूर ग़ज़ल 'सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है...' को नारे की शक्ल में बुलंद किया और पाकिस्तान के शायर हबीब जालिब की मशहूर नज़्म 'दस्तूर' को भारत के एक छात्र शशिभूषण ने अपनी आवाज़ दी तब दोनों देश को छात्र आंदोलन एक दूसरे से जुड़ गए। यही सांस्कृतिक आयाम किसी आंदोलन को मज़बूती देता है। फ़ैज़ और जालिब जैसे शायर हमेशा ही भारत के छात्र आंदोलनों की आवाज़ बनते रहे हैं। कभी लगा ही नहीं कि वह हमारे देश के शायर नहीं हैं। एक बड़ा शायर हमेशा ही दूनिया भर के मज़लूमों और महकूमों के लिए लिखता है। उसका कोई एक देश नहीं होता है। वो सबका होता है।

आज दोनों देशों में सत्ता के सामने छात्र ही विपक्ष के रूप में खड़े हैं। क्योंकि जो राजनैतिक दल पहले सत्ता में रह चुके हैं उनके पास इतना साहस या इच्छाशक्ति नहीं है कि वो इस पूँजीवादी व्यस्था के ख़िलाफ़ लड़ सकें। इसलिए भी शिक्षा के निजीकरण के माध्यम से विश्वविद्यालयों में लगातार छात्र अधिकारों का हनन किया जा रहा है। वहाँ से उठने वाली प्रतिरोध की आवाज़ को दबाया जा रहा है। लेकिन एक दिन वो अब्र यहीं से उट्ठेगा जो पूरी दुनिया पर बरसेगा।

(ज़फ़र इक़बाल एक राजनैतिक कार्यकर्ता हैं और आजकल पटना में रहते ह

(पृष्ट 6 से जारी) देश में बलात्कार के कई मामले चल रहे हैं। जब आरोपी कोई जानीमानी हस्ती होता है तो पुलिस का रवैया एकदम पलट जाता है। उत्तर प्रदेश में सत्ताधारी पार्टी के विधायक के ख़िलाफ़ चल रहे बलात्कार के मामले में पीड़ित महिला और उसके परिवार को लगातार हिंसा का सामना करना पड़ रहा है। वहाँ की पुलिस आरोपी का साथ दे रही है। और ये सिर्फ़ एक मामला नहीं है। देश के कोने-कोने में ऐसे कई क़िस्से हैं।

दूसरी बात, जो हैदराबाद में पुलिस ने किया वह क़ानून का दुरूपयोग है। क़ानून की व्यवस्था सबसे ज़्यादा उन लोगों के लिए ज़रूरी है जो सामाजिक रूप से कमज़ोर हैं। ऐसे समुदाय ही यौन हिंसा ज़्यादा झेलते हैं। आज पुलिस ने क़ानून अपने हाथ में ले लिया, कल कोई और ले लेगा। यह तो ऐसा समाज बनाएगा जिसमें कमज़ोर को न्याय मिलने का रास्ता और मुश्किल हो जाएगा।

और आख़री बात, क्या इस तरह से कुछ लोगों को मारकर, उन्हें कठोर सज़ा देकर, बलात्कार की घटनाएँ कम हो जाएँगी? हमें यह समझना बहुत ज़रूरी है कि आँकड़े दिखाते हैं कि सबसे ज़्यादा बलात्कार और यौन हिंसा पहचान वाले ही करते हैं। ऐसी घटनाएँ प्राय: परिवारों में होती है या आस-पड़ोस के लोग करते हैं। समाज के एक हिस्से की सोच है कि कुछ लोगों के शरीर पर हिंसा की जा सकती है, उनके साथ ज़बरदस्ती करना सही है। इस मानसिकता के तहत बलात्कार की घटनाएँ होती हैं। क्या हर बलात्कारी को मौत की सज़ा देकर यह मानसिकता बदली जा सकती है? हमारे अनुभव हमें यह बताते हैं कि यह सोच का बदलाव है और सिर्फ़ दहशत से नहीं सुधारा जा सकता। ज़रूरी है कि हम सब लोग मिलकर ऐसा माहौल बनाएँ जहाँ यौन हिंसा न हो और हर इंसान महफ़ूज़ रहे। इसके लिए हर व्यक्ति को बराबरी, सम्मान और मैत्रीभाव से देखना ज़रूरी है।

(यह लेख चयनिका ने लिखा है। चयनिका एक क्वीयर नारीवादी सामाजिक कार्यकर्ता है और बॉम्बे में रहते हैं।)

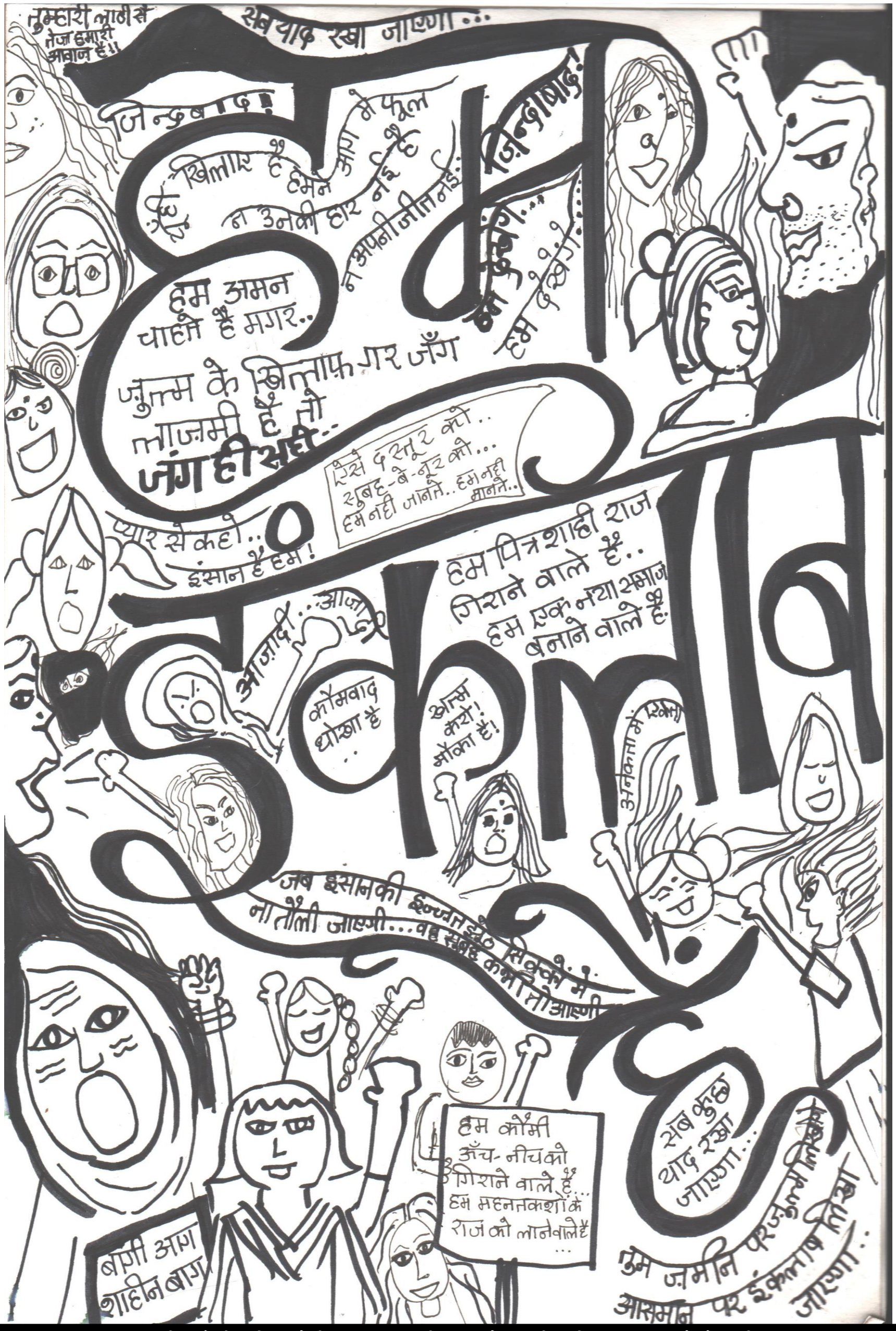

सीमित और निजी वितरण के लिए जन जागरण शक्ति संगठन के महासचिव रंजित पासवान की ओर से प्रकाशित।
संपर्क: बैजनाथपुर, वार्ड नंबर 6, अररिया आर.एस.। मोबाइल नंबर – 9973363664